संविधान संवाद शृंखला - 12

संविधान बोध और संवैधानिक नैतिकता

विकास संवाद

शीर्षक

संविधान बोध और संवैधानिक नैतिकता

(संविधान संवाद शृंखला - 12)

लेखक

सचिन कुमार जैन

संपादन सहयोग

पूजा सिंह, राकेश कुमार मालवीय,
रंजीत अभिज्ञान, पंकज शुक्ला

संस्करण - प्रथम

वर्ष - 2023

प्रतियां - 1000

सहयोग राशि
छात्रों के लिए - ₹ 20
नागरिकों के लिए - ₹ 25
संस्थाओं के लिए - ₹ 30

मुद्रक - अमित प्रकाशन

सज्जा - अमित सक्सेना

प्रकाशक

विकास संवाद

ए-5, आयकर कॉलोनी, जी-3, गुलमोहर कॉलोनी,
बावड़िया कलां, भोपाल (म.प्र.) - 462039. फोन : 0755-4252789
ई-मेल : office@vssmp.org / www.vssmp.org
www.samvidhansamvad.org

संविधान बोध और संवैधानिक नैतिकता

यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि क्या बिना संविधान बोध और संवैधानिक नैतिकता के भारत वांछित प्रगति हासिल कर सकता है? क्या बिना इसके आधुनिक भारत का बोध सुनिश्चित किया जा सकता है? देश की आर्थिक और सामरिक शक्ति की बात हो रही है, अर्थव्यवस्था को पांच लाख करोड़ डॉलर तक पहुंचाने की बात की जा रही है, क्या वैमनस्यता, हिंसा, अवसाद, द्वेष के फैलाव और लोकतांत्रिक अवमूल्यन के बीच यह लक्ष्य हासिल किया जा सकेगा?

संविधान बोध और सामाजिक हकीकत

वर्ष 2022 में राजस्थान में धार्मिक विद्वेष के कारण दो मुसलमानों द्वारा कन्हैया लाल नामक एक हिंदू व्यक्ति की बर्बर हत्या कर दी गयी। मध्य प्रदेश के नीमच में भंवरलाल जैन नाम के मानसिक अस्वस्थ व्यक्ति की हत्या केवल इस शंका के आधार पर कर दी गयी कि शायद वह मुसलमान है। राजस्थान के बारवां गांव के जितेंद्र मेघवाल की चाकू मार कर हत्या कर दी गयी क्योंकि सूरज सिंह राजपुरोहित और रमेश सिंह को अनुसूचित जाति के जितेन्द्र मेघवाल का तनी हुई मूंछें रखना और नज़रें मिलाकर बात करना अखरता था।

संविधान ने जिस प्रकार के समाज और देश के निर्माण की योजना का स्वप्न देखा था, ये घटनाएं उसके ठीक विपरीत हैं। ऐसी घटनाओं से अक्सर कानूनी तरीके से निपटा जाता है, जबकि इन्हें संवैधानिक मूल्यों की दृष्टि से भी देखने की आवश्यकता है।

अदालती बोझ और न्याय बोध

भारत की जिला और तालुका स्तर की अदालतों में 4.17 करोड़ मामले लंबित हैं, जिनमें से 35.70 लाख मामले 10 साल से ज्यादा से चल रहे हैं। 1.06 लाख प्रकरण तो 30 साल से ज्यादा पुराने हैं। इतना ही नहीं उच्च न्यायालयों में 59.67 लाख मामले लंबित हैं। इनमें से 13.40 लाख मामले 10 साल से ज्यादा समय से लंबित हैं। कारण यह कि भारत की राज्य व्यवस्था और समाज व्यवस्था दोनों में ही 'न्याय बोध' का जन्म नहीं हो पाया है। कुछ न्यायाधीश अच्छे होते हैं और वे अपनी भूमिका बेहतर तरीके से निभाते हैं लेकिन इससे पूरी व्यवस्था में न्याय बोध पैदा नहीं होता। भारत अपने भविष्य का निर्माण कृत्रिम मेधा (आर्टिफिशयल इंटेलिजेंस) और सांप्रदायिक मेधा (कम्युनल इंटेलिजेंस) से नहीं, बल्कि संवैधानिक मेधा (कॉन्स्टीट्यूशनल इंटेलिजेंस) के माध्यम से ही कर सकता है।

सांप्रदायिकता और वैमनस्यता की राजनीतिक विचारधारा भारतीय समाज में संवैधानिक बुद्धिमत्ता का विकास नहीं होने देगी। अत: यह पहल बहुत ऊर्जा और प्रतिबद्धता के आधार पर संचालित करनी होगी। इसे हम संवैधानिक प्रज्ञा भी कह सकते हैं।

संवैधानिक मेधा या बुद्धिमत्ता हमें राज्य और राजनीतिक दलों की मंशा को समझने की शक्ति प्रदान कर सकती है। आज सरकार के कई जनविरोधी फैसले केवल इसलिए स्वीकार कर लिए जा रहे हैं क्योंकि वे राज्य व्यवस्था की ताकत का इस्तेमाल एक ख़ास धर्म के अनैतिक विस्तार के लिए कर रहे हैं।

संविधान बोध और विद्वान सदस्यों की राय

संविधान सभा में विद्वान सदस्यों ने भी इस विषय में अपनी राय दर्ज की थी:

'किसी संविधान का सफल होना केवल उन लोगों पर निर्भर नहीं करता, जो उसे व्यवहार में लाते हैं, बल्कि उन लोगों पर निर्भर करता है जिनके लिए वह व्यवहार में लाया जाता है। हमारे देशवासियों का चरित्र इसी संविधान की कसौटी पर कसा जाएगा'।

– जदुवंश सहाय

'हमने बहुत ईमानदारी से परिश्रम करके तथा सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य से इस संविधान को पारित किया है और अब हमें देखना है कि व्यवहार में यह कैसा रूप धारण करता है? यह हमारा कर्तव्य है कि हम इस संविधान का पोषण करें और लोगों को इस संविधान में सन्निहित सिद्धांतों की शिक्षा दें। यह एक महान कार्य है और मुझे आशा है कि हमारा देश तथा केंद्र के हमारे नेता इस कार्य को संपन्न करने में समर्थ होंगे। यदि वे गलत रास्ते पर जाएंगे तो केंद्र के बहुत शक्तिशाली होने के कारण सारा राष्ट्र ही गलत रास्ते पर चला जाएगा'।

– लोकनाथ मिश्र

'संविधान को हम जितना अच्छा बना सकते थे, बनाया है। अब हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी कॉंस्टीट्यूएंसीज (विधायी – संसदीय क्षेत्र) में जाएं और इस विधान को अपने गांवों में लोगों को समझाएं, जहां हमारा कार्यक्षेत्र है। शिक्षा व प्रचार के अभाव में कभी-कभी जनता में बड़ी गलतफहमी फ़ैल जाती है। आम जनता के लिए स्वराज्य और संविधान का यही मतलब है कि उन लोगों को खाने के लिए रोटी, पहनने के लिए कपड़ा, रहने के लिए मकान और शिक्षा मिले'।

– बलवंत सिंह मेहता

बीते वर्षों के दौरान हमारी सरकारें और राजनीतिक दल संवैधानिक बोध जागृत करने में नाकाम रहे हैं। समाज से तो संवैधानिक बोध की अपेक्षा की भी नहीं जा रही थी क्योंकि उसके ज्यादातर व्यवहार संवैधानिक मूल्यों के खिलाफ ही रहे हैं। भारत ने आज़ादी के बाद आर्थिक विकास को ज्यादा महत्व दिया, लेकिन वह आर्थिक विकास संवैधानिक मूल्यों पर कैसे आधारित हो, यह सोचना भूल गया। सरकार के स्तर पर बैंकों के राष्ट्रीयकरण सरीखी नीतियां बनीं, लेकिन सामाजिक व्यवहार के संदर्भ में संविधान की उपेक्षा की बड़ी चूक हो गयी। आज आज़ादी के 75 साल बाद हमारा हासिल है– असमानता से भरी अर्थव्यवस्था, साम्प्रदायिक वैमनस्यता और संसाधनों का गैर-जिम्मेदार इस्तेमाल।

संवैधानिक चेतना और बुद्धिमता

संवैधानिक चेतना और बुद्धिमत्ता (कॉन्स्टीट्यूशनल कान्शन्स और इंटेलिजेंस) का अर्थ है हमारे निजी, सामाजिक और व्यवस्थागत जीवन में संवैधानिक मूल्यों का मौजूद होना, उनका पालन किया जाना; ऐसी नज़र विकसित होना जो यह देख सके कि न्याय, समता, स्वतंत्रता, गरिमा, बंधुता के मूल्यों की कब, कहां और कैसे उपेक्षा होती है? इस दृष्टि से ऐसी चेतना विकसित हो सकेगी, जो देश के लोगों में आर्थिक असमानता और बहुसंख्यक आबादी के साथ होने वाले

अमानवीय शोषण को देखने और उसका प्रतिरोध करने की क्षमता विकसित करेगी। संवैधानिक चेतना विकसित न होने का असर हमें भारत के जीवन पर दिखाई देता है।

> संवैधानिक चेतना और बुद्धिमत्ता का सबसे महत्वपूर्ण गुण यह है कि इसे व्यक्ति में, हर बच्चे, युवा और लैंगिक पहचान से जुड़े व्यक्ति में समान रूप से पाया जा सकता है, लेकिन समाज और सरकार मिलकर इसे निष्क्रिय बनाये रखते हैं। यदि संवैधानिक मूल्यों को सबके द्वारा स्वीकार कर लिया जाए तो मजहबी–जातीय–नस्लीय आधारों पर होने वाले टकरावों को निष्प्रभावी किया जा सकता है। लोकतंत्र के मूल्यों को अपने जीवन के व्यवहार का आधार बनाना ही 'संवैधानिक बौद्धिकता' है।

संविधान का अनुच्छेद 17 कहता है – 'अस्पृश्यता' का अंत किया जाता है और अस्पृश्यता का व्यवहार करना गैरकानूनी है। वास्तव में इस प्रावधान को जीवन में सजगता के साथ अपनाना ही संवैधानिक बुद्धिमत्ता है। यह एक चुनौती है क्योंकि संविधान अस्पृश्यता का अंत करना चाहता है लेकिन हमारा समाज इस व्यवहार और व्यवस्था को बनाये रखना चाहता है। छुआछूत और जातिवादी–नस्लवादी व्यवहार से मुक्त होने के लिए संवैधानिक बुद्धिमत्ता का होना एक अनिवार्यता है।

संवैधानिक साक्षरता की जरूरत

संविधान अपेक्षा करता है कि हर भारतीय को संविधान की मूल भावना को जानना–समझना चाहिए। यह उसकी जिम्मेदारी भी है और अधिकार भी। संवैधानिक बुद्धिमत्ता लोगों में वह विवेक उत्पन्न करेगी, जिससे वे न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका के कामकाज की समीक्षा कर पाएंगे।

इसके लिए संवैधानिक साक्षरता जरूरी है। अगर देश में संवैधानिक साक्षरता पर कोई पहल की गयी होती तो लोगों को यह पता चल गया होता कि संविधान के मुताबिक़ भारत सरकार को जो भी शक्तियां या अधिकार मिलते हैं, वह भारत के लोगों से ही मिलते हैं। लोग जिस उम्मीदवार और जिस राजनीतिक दल को अपना मत देते हैं, वे ही उसकी नीतियों, विचार और उनके कामों के लिए भी जिम्मेदार होता है। संविधान के द्वारा उन्हें दी गयी शक्ति के बारे में जानना और उसके महत्व को महसूस करना ही संवैधानिक बुद्धिमत्ता है।

संवैधानिक चेतना और बुद्धिमत्ता को अपनाने का मतलब है– भारत के आधुनिक चारित्रिक विरोधाभास को समाप्त करना। ज़रा गौर करिए: बच्चों को स्कूल में गांधी, अम्बेडकर, ज्योतिबा फुले के बारे में पढ़ाया जाता है, लेकिन उनके बारे में पढ़ाई उनकी जन्मतिथि, जन्म स्थान या उनके आयोजनों तक सीमित रहती है। उनके मूल्यों और विचार को न्यूनतम ही रखा जाता है और यदि उन पर कहीं जिक्र आता भी है तो वह भी सूत्रों तक ही सीमित होता है। नागरिक शास्त्र पढ़ाया जाता है, लेकिन जब बच्चा वापस घर आता है, तो वहां उसे छुआछूत, हिंसक प्रतिस्पर्धा और असमानता की शिक्षा ही मिलती है।

संविधान की जानबूझ कर उपेक्षा

भारत के राजनीतिक दलों, विभिन्न राजनीतिक – सामाजिक – आर्थिक विचारधाराओं और सरकारों ने संविधान की सुविचारित उपेक्षा की है। इस उपेक्षा का इतिहास उतना ही है, जितनी भारत के संविधान की उम्र है। भारत में सैनिक अनुशासन सिखाने के लिए शिविर लगाये जाते हैं, किन्तु संविधान को जानने के लिए शिविर नहीं लगाये गये। भारत में हज़ारों वर्ष से मौजूद रामायण–महाभारत सरीखी किताबों पर आज भी सैकड़ों टीकाएं और विश्लेषण लिखे और

प्रकाशित किए जाते हैं, लेकिन संविधान पर ऐसी पहल करने में किसी समुदाय ने रूचि नहीं दिखाई। संविधान की यह उपेक्षा अनजाने में ही नहीं हुई है। वास्तव में भारत के संविधान को भारत के लोगों ने ही नहीं अपनाया। उन्होंने आज़ादी के बाद भी अपने मन–मस्तिष्क में जातिवाद, वर्ण व्यवस्था, लैंगिक भेदभाव, आर्थिक असमानता और समाज के भीतर मौजूद उपनिवेशवाद को ही सजाये रखा।

संवैधानिक मूल्यों के पालन की जिम्मेदारी केवल सरकारों या लोक सेवकों तक ही सीमित नहीं है। संवैधानिक चेतना और बुद्धिमत्ता के विकास से यह समझ बनेगी कि हर भारतीय को अपने निजी जीवन में, अपनी निजी और पेशेवर भूमिकाओं में और अपने सामाजिक व्यवहारों में भी समता, न्याय, बंधुता, गरिमा और स्वतंत्रता के मूल्यों को अपनाना ही होगा।

संवैधानिक नैतिकता

संवैधानिक नैतिकता पर भले ही हमारी संविधान सभा में बहुत अधिक चर्चा नहीं हुई, लेकिन डॉ. अम्बेडकर इसे हमारे संविधान का 'श्वसन तंत्र' मानते थे। चार नवंबर 1948 को संविधान सभा में संविधान के प्रारूप पर बहस शुरू करते हुए उन्होंने कहा था कि भारतीय भूमि अपने स्वभाव से ही अप्रजातांत्रिक है और भारत में संवैधानिक नैतिकता नहीं है।

इस बात से समझा जा सकता है कि भारत के लिए एक 'सभ्यता मूलक और लोकतांत्रिक व्यवस्था' की कल्पना करना कितना कठिन रहा होगा। आज़ादी के बाद भारत ने संविधान को तो अपना लिया, लेकिन संविधान की संवाहक 'संवैधानिक नैतिकता' को कभी नहीं अपनाया।

संवैधानिक नैतिकता का अर्थ और उसके सूचक

संवैधानिक नैतिकता से आखिर क्या आशय है? वास्तव में संवैधानिक नैतिकता का मतलब है– राजनीतिक दलों, न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका, सामाजिक संगठनों और नागरिकों का संवैधानिक मूल्यों और उस पर निर्मित व्यवस्था में विश्वास होना। जब समाज सजग होगा, तब वह प्रश्न पूछेगा ही और ऐसी स्थिति में स्पष्ट है कि राज्य व्यवस्था और सरकारों को आलोचना का भी सामना करना होगा।

> संवैधानिक नैतिकता का पहला सूचक यह है कि सरकारें आलोचना के अधीन हों यानी वे अपनी आलोचना सुनने और जरूरी होने पर उपचारात्मक उपाय या सुधार करने को लेकर तत्पर हों।

संवैधानिक नैतिकता का दूसरा सूचक बहुलता और विविधता है। इसे हृदय और व्यवहार की गहराइयों से अपनाया जाना लोकतंत्र के वजूद की बुनियादी शर्त है। यदि समाज बहुलता और विविधता के तत्व को अपनाएगा, तो हिंसा का भाव अपने आप निष्क्रिय हो जाएगा। इसीलिए डॉ. अम्बेडकर 'बंधुता' के मूल्य को सबसे आधारभूत सामाजिक–राजनीतिक मूल्य मानते रहे।

> संवैधानिक नैतिकता का तीसरा सूचक यह है कि कोई भी व्यक्ति अपने आप को पूरे समाज या देश का प्रतिनिधि घोषित नहीं करता है। जब एक व्यक्ति या एक समूह को देश का प्रतिनिधि स्थापित करने की कोशिश हो, तब उस कोशिश और उन समूहों पर गहरी शंका व्यक्त की जानी चाहिए। ऐसा इसलिए क्योंकि एक व्यक्ति को सबके प्रतिनिधि के रूप में स्थापित करना कुछ और नहीं बल्कि लोकतंत्र के मूल्यों और लोकतांत्रिक व्यवस्था को ख़त्म करने की साजिश है।

भारत की विविधता : ताकत या कमजोरी?

भारत के लिए इन तमाम गुणों से सुसज्जित संविधान बनाना आसान काम नहीं था। ऐसा इसलिए क्योंकि वास्तव में भारत छोटे आकार का समान स्वरूप वाला देश नहीं था। रही सही कसर राजनीतिक–सामाजिक और आर्थिक स्वार्थों ने पूरी कर दी थी। यही कारण है कि भारत की जो विविधता उसकी सबसे बड़ी ताकत होनी चाहिए थी, वह उसकी सबसे बड़ी कमजोरी साबित हुई। इन तमाम चुनौतियों के बीच अगर भारत एक विधान के माध्यम से एक समग्र और संपूर्ण राष्ट्र का रूप ले सका, तो उसमें डॉ. अम्बेडकर की अविस्मरणीय भूमिका रही है।

हालांकि डॉ. अम्बेडकर को खुद भी यह अहसास था कि भारत की सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक व्यवस्था इस संविधान को उसकी मूल भावना के साथ लागू नहीं होने देगी क्योंकि इस संविधान को लागू करने के लिए देश में छुआछूत, जातिवादी व्यवहार, लैंगिक भेदभाव, आर्थिक असमानता पैदा करने वाली नीतियों को तिलांजलि देने सरीखे कदम उठाने जरूरी होंगे, जिनके लिए भारत का समाज बहुत तत्पर नहीं होगा।

तानाशाही को रोकने का प्रयास

डॉ. अम्बेडकर को यह बात अच्छी तरह पता थी कि अच्छा संविधान बन जाने के बावजूद सत्ता और सरकार पर तो देश के उन्हीं दो–तीन प्रतिशत लोगों का ही कब्जा रहने वाला है। यही कारण है कि उन्होंने एक ऐसी व्यवस्था बनाने की कोशिश की, जिसमें एक व्यक्ति या एक छोटे समूह की तानाशाही स्थापित न हो पाए। संविधान का प्रारूप प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा कि भारत का राष्ट्र प्रमुख राष्ट्रपति होगा, किन्तु वह अकेले कोई भी निर्णय न ले सकेगा। अमेरिका के

राष्ट्रपति को शासन के सभी अधिकार प्राप्त हैं। उसके अधीन कई सचिव होते हैं, जो भिन्न-भिन्न विभागों के अधिकारी होते हैं, वे चुने हुए प्रतिनिधि नहीं होते हैं। जबकि स्वतंत्र भारत में राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, किन्तु राष्ट्र पर शासन नहीं करता है। उसके अधीन विभिन्न विभागों के मंत्री होते हैं, ये मंत्री राज्यसभा या लोकसभा के सदस्य होते हैं। यही मंत्रिमंडल राष्ट्रपति को अपनी राय से अवगत कराता है। सामान्यतया राष्ट्रपति मंत्रिमंडल की राय को मानने, उस पर मुहर लगाने के लिए बाध्य होता है। वह उसकी राय के प्रतिकूल कुछ नहीं कर सकता है। अमेरिकी राष्ट्रपति किसी भी सचिव को कभी भी हटा सकता है, किन्तु भारत का राष्ट्रपति किसी मंत्री को तब तक नहीं हटा सकता, जब तक कि मंत्रिमंडल को बहुमत प्राप्त है।

डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में यह भी कहा था कि कार्यपालिका में स्थिरता होनी चाहिए और उसे दायित्वपूर्ण होना चाहिए। इसी तर्क के आधार पर संविधान में लोकतांत्रिक व्यवस्था को अपनाया गया। उन्होंने कहा कि भारत जैसे देश में कार्यपालिका के दायित्वों की दैनिक छानबीन बहुत आवश्यक है। यह कार्य संसद की प्रक्रियाओं के जरिए किए जाने की व्यवस्था की गयी, जहां सवाल-जवाब होते हैं। प्रश्न पूछे जा सकते हैं, अविश्वास प्रस्ताव, स्थगन प्रस्ताव और अभिभाषण पर बहस हो सकती है। यदि हमारी संसद में आज बहस कमज़ोर हो रही है, अधिनायकवादी तरीके से क़ानून बन रहे हैं या संशोधित किए जा रहे हैं, तो इसका मतलब है कि विधायिका बहुमत का गलत इस्तेमाल करके संविधान की मूल भावना की उपेक्षा कर रही है।

केंद्र-राज्य विभाजन और लोक सेवा व्यवस्था

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि संविधान ऐसी राज्य व्यवस्था स्थापित करता है जिसे हम द्विमुखी राज्य व्यवस्था कह सकते हैं। इसमें संघ राज्य (यानी केंद्र सरकार) और प्रादेशिक राज्य (राज्य सरकार) हैं और इन दोनों को ही प्रभुता प्राप्त है, जिसका प्रयोग वे संविधान के मानकों के मुताबिक़ कर सकते हैं। संघ और राज्य सरकारों के दायित्वों और अधिकारों का निर्धारण बेहद संजीदा सोच विचार के बाद किया गया।

डॉ. अम्बेडकर ने इस विषय पर कहा कि जरा कल्पना करें कि हमारे यहां 20 प्रादेशिक राज्य हैं और सभी में विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, फौजदारी क़ानून, बैंकिंग और व्यवसाय और न्याय व्यवस्था के 20 अलग-अलग क़ानून हैं, तब नागरिकों का क्या होगा? इससे राज्य कमज़ोर होगा। वे एक स्थान से दूसरे स्थान नहीं जा सकेंगे। इस स्थिति को ध्यान में रखकर देश में एक न्याय व्यवस्था, मूलभूत कानूनों और नियमों में एकरूपता और आवश्यक पदों पर नियुक्ति के लिए देश में एक लोक सेवा व्यवस्था का प्रावधान किया गया। इसके दूसरी तरफ शिक्षा, स्वास्थ्य, भूमि क़ानून, रोज़गार नीतियां, कृषि आदि पर राज्य सरकारों को कायदे-क़ानून बनाने के अधिकार दिए गये।

उस समय कई लोगों ने यह आशंका प्रकट की थी कि डॉ. अम्बेडकर केंद्र सरकार (संघ व्यवस्था) को बहुत ज्यादा अधिकारसंपन्न बना रहे हैं। इसके उत्तर में उन्होंने कहा था कि देश को एक बनाये रखने के लिए शक्तिशाली केंद्र एक आवश्यकता है। हालांकि कालांतर में वे आशंकाएं कुछ हद तक सही साबित हुईं और प्रभावशाली राजनीतिक विचारधाराओं ने भ्रष्ट पूंजी के साथ गठजोड़ करके भारत में संघीय लोकतंत्र के ढांचे को कमजोर किया। आज आर्थिक संसाधनों से लेकर, शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि तक की व्यवस्थाओं पर केंद्र ने अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया है और राज्य सरकारों को अपंग बना दिया है।

हालांकि यह सोचना गलत होगा कि डॉ. अम्बेडकर इसका बिल्कुल अनुमान नहीं लगा सके थे। उन्होंने संविधान सभा में ही इतिहासकार जार्ज ग्रोट के हवाले से कहा था कि किसी भी स्वतंत्र और शांतिपूर्ण सरकार के लिए यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि संवैधानिक नैतिकता का प्रसार न केवल वहां के बहुसंख्यक लोगों में हो, बल्कि देश के सभी नागरिकों में किया जाए क्योंकि कोई भी शक्तिशाली, हठी, अल्पमत वाला वर्ग, चाहे वह स्वयं इतना शक्तिसंपन्न न हो कि शासन की बागडोर अपने हाथ में ले सके, पर स्वतंत्र-शासन का कार्य संचालन दुरूह या कठिन तो बना ही सकता है।

संवैधानिक नैतिकता का सामान्य अर्थ

- अपने कानूनों के प्रति श्रद्धा का भाव
- विधि की आज्ञाओं और व्यवस्थाओं का पालन
- कानूनों और समुचित तर्कों के अधीन वाक और अभिव्यक्ति की आज़ादी
- शासन-प्राधिकारियों की आलोचना की सुविधा
- हर हाल में संवैधानिक मूल्यों और व्यवस्था के प्रति आदर और विश्वास

'संविधान को लागू करने के लिए वैधानिक नैतिकता बुनियादी जरूरत है। क्या हम वैधानिक नैतिकता का प्रसार संभव मानते हैं? वैधानिक नैतिकता की भावना स्वाभाविक, प्रकृति जन्य नहीं होती है। इसे तो अभ्यास द्वारा अपनाना होगा। हमें यह जानना चाहिए कि हमारे देशवासियों को अभी भी इसे सीखना है। भारतीय भूमि स्वभावत: ही अप्रजातंत्रात्मक है और यहां प्रजातंत्र केवल एक ऊपरी आवरण है। ऐसे में शासन के नियमों के निर्धारण का काम विधान मंडल पर न छोड़ना ही बेहतर है'।

– डॉ. बी.आर. अम्बेडकर

संवैधानिक प्रासंगिकता

भारत का संविधान इतने समय बाद भी प्रासंगिक बना हुआ है क्योंकि संविधान निर्माता यह जानते थे कि संविधान के लागू हो जाने के बाद भी हमारे देश में 'सामाजिक विधानों' (जिनमें भेदभाव, छुआछूत, असमानता और हिंसा के कई रूप मौजूद हैं) का ज्यादा प्रभाव रहेगा और 'संवैधानिक विधानों' की मौजूदगी बहुत कमज़ोर रहेगी क्योंकि समाज आने वाले समय में उन्हीं राजनीतिक दलों को शासन का अधिकार देगा, जो 'सामाजिक विधानों' को बनाए रखने के लिए तैयार रहेंगे। शायद इसी आशंका को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने संविधान में कई छोटी-छोटी बातों का उल्लेख किया था ताकि आने वाली सरकारें संविधान को पूरी तरह से ख़तम न कर दें। यह भी एक वजह है जिसके चलते भारत का संविधान विश्व का सबसे बड़ा लिखित संविधान बन गया।

वर्तमान में हमारा देश सांप्रदायिक, जातिवादी और तमाम तरह की प्रतिगामी व्यवस्थाओं के बीच उलझा हुआ है। उसे एक बेहतर जीवन देने के लिए यह जरूरी है कि देश के नागरिकों में समुचित ढंग से 'संवैधानिक नैतिकता' का विकास किया जाए। हमारे संविधान निर्माताओं ने एक श्रेष्ठ संविधान का निर्माण किया, उसे लागू भी कर दिया गया, लेकिन समस्या यह हुई कि देश के नागरिकों को संविधान संस्कार नहीं दिए गये। शिक्षण संस्थाएं तो शुरू कर दी गयीं, लेकिन नागरिक शालाओं की स्थापना और उनका संचालन नहीं किया गया। इसी उपेक्षा की वजह से आज देश संविधान से विमुख नजर आता है।

संवैधानिक मूल्य का संदर्भ

कोई भी परिवर्तन ऐसा होना चाहिए जो समाज को समतामूलक, मानवीय और न्यायमूलक बनाये, करुणा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता में विश्वास रखने वाला बनाये। यह तभी हो सकेगा जब हम अपने जीवन में सकारात्मक मूल्यों को शामिल करेंगे। यदि समाज का हर व्यक्ति मूल्यों को व्यवहार में शामिल करेगा तो पूरे समाज के व्यवहार में स्थायी बदलाव आ सकता है।

इन मूल्यों का स्पष्ट जुड़ाव 'संवैधानिक मूल्यों' से होता है। संवैधानिक मूल्य केवल भाषण या प्रवचन के विषय नहीं हैं, बल्कि उनकी संवैधानिकता भी है। नागरिकों या राज्य के पास उन्हें अस्वीकार करने या खारिज करने का विकल्प नहीं होता है। केवल कानून या नीति बन जाने से बदलाव नहीं आते। यदि आ भी गये, तो ऐसे बदलाव स्थायी नहीं होते।

क्या हैं संवैधानिक मूल्य

संवैधानिक मूल्य कोई अमूर्त विचार नहीं हैं। उनका एक स्पष्ट वैधानिक स्वरूप होता है। हमारे संविधान की उद्देशिका में स्पष्ट रूप से सात मूल्यों का उल्लेख किया गया है :

संवैधानिक मूल्यों का महत्व

संवैधानिक होने के कारण इन मूल्यों की सार्वभौमिकता भी है और अनिवार्यता भी। समाज जिन मूल्यों को अपनाता है, उनसे ही उसके चरित्र, स्वभाव और विश्वास का निर्माण होता है। जब समाज अहिंसा, करुणा, समानता, व्यक्ति की स्वतंत्रता, गरिमा और न्याय सरीखे मूल्यों को अपनी संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था का आधार बना लेता है, तब राज्य और व्यवस्था का व्यवहार बिलकुल अलग ही स्वरूप में उभर कर आता है।

यह सोचा जाना जरूरी है कि क्या बिना न्याय, समानता और करुणा को अपनाये; वंचितों को आवश्यक सेवाएं प्रदान की जा सकती हैं। अगर शिक्षा के अधिकार में समानता नहीं होगी, तो जाति आधारित और लैंगिक भेदभाव के असर से बच्चों को कैसे बचाया जाएगा? सुरक्षित मातृत्व या मातृत्व अधिकारों की बात भी समानता, न्याय और करुणा के मूल्यों के बिना की जा सकती है? नहीं।

संविधान आधारित दृष्टिकोण का अर्थ

संविधान आधारित दृष्टिकोण को अपनाने का मतलब है संवैधानिक मूल्यों और प्रावधानों को जानते हुए उन्हें अपने नज़रिये और कार्यक्रम का हिस्सा बनाना। संविधान में दर्ज मूलभूत अधिकारों, नीति निर्देशक तत्वों, मूल कर्तव्यों, शासन व्यवस्था के तरीकों और न्यायिक-विधायी पद्धति को जानना और अपनी रणनीति में शामिल करना।

बच्चों के अधिकारों तथा शोषण से मुक्ति का सपना भारत के समाज ने उपनिवेशवाद से मुक्ति के समय ही देख लिया था, किन्तु उस सपने को फैलने से रोकने की कोशिश बार-बार की गयी। कभी जातिवाद की बारूद से, तो कभी सांप्रदायिकता के जरिये, कभी असमान विकास की प्रक्रियाओं के जरिये, तो कभी संसाधनों के असमान वितरण के जरिये, तो कभी स्वास्थ्य, शिक्षा, भोजन, रोज़गार की अकाल पैदा करके इसे रोका गया।

सबका संविधान

हमें यह सोच बदलना होगा कि संविधान को जानना केवल कुछ सत्ताधारी लोगों की जिम्मेदारी है। संविधान को अपने जीवन का मूल अंग बनाना हम सभी की जिम्मेदारी है। हर नागरिक को संविधान और उसके प्रावधानों के बारे में जरूरी जानकारी रखनी चाहिए और सत्ता से यह पूछना चाहिए कि विकास की नीतियों और प्रक्रियाओं पर काम करते हुए संविधान को आधार बनाया जा रहा है अथवा नहीं।

अब वक्त आ गया है कि हम सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक बदलाव और विकास की प्रक्रिया में 'संविधान आधारित दृष्टिकोण' को अपनाएं। हमारा संविधान समाज और राज्य के बीच समन्वय और व्यवस्था के संचालन के लिए कुछ बुनियादी सिद्धांत प्रतिपादित करता है। इन सिद्धांतों के क्रियान्वयन में नागरिकों की भूमिका सबसे अहम है। समस्या यह है कि आज़ादी के बाद देश में 'नागरिकता' के पाठ को लेकर शिक्षण-प्रशिक्षण ही नहीं हुआ।

इसके पीछे दो वजह हो सकती हैं। एक तो यह कि जाति, लिंग, आर्थिक, वर्ग और क्षेत्र आधारित विभाजन ने राष्ट्र को संविधान पर एकजुट न होने दिया। दूसरा यह कि हमारे यहां नागरिकता को महत्वपूर्ण माना ही नहीं गया क्योंकि नागरिकता से परे हम धर्म, जाति और लैंगिक हितों में उलझे रहे। आज भी अगर हम संविधान को सही ढंग से समझना–महसूस करना शुरू करें, तो सजग नागरिकता की तरफ जरूरी कदम बढ़ाया जा सकता है।

संवैधानिक चेतना और बुद्धिमता

संवैधानिक चेतना का अर्थ है निजी, सामाजिक और व्यवस्थागत जीवन में संविधान के मूल्यों का मौजूद होना, उनका पालन किया जाना। इसका अर्थ है एक ऐसी नज़र विकसित होना जो यह देख सके कि कब, कहां, कैसे और क्यों न्याय, समता, स्वतंत्रता, गरिमा, बंधुता के मूल्यों की उपेक्षा होती है।

यदि यह चेतना विकसित हो सके तो हम देश के लोगों में आर्थिक असमानता और बहुसंख्यक आबादी के साथ होने वाले अमानवीय शोषण को देखने और उसका प्रतिरोध करने की क्षमता पा लेंगे। संवैधानिक चेतना का सीधा जुड़ाव राजनीतिक लोकतंत्र की मजबूती से भी है। यह चेतना लोगों को समझा सकती है कि उन्हें जाति, धर्म और वैमनस्यता को आधार बनाकर अपने प्रतिनिधि और सरकार को नहीं चुनना है।

'यदि हम लोकतंत्र को केवल रूप में ही नहीं वरन यथार्थ में बनाये रखना चाहते हैं तो हमें क्या करना चाहिए? मेरे विचार के अनुसार सबसे पहले हमें यह करना चाहिए कि अपने सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हम संवैधानिक रीतियों को दृढ़तापूर्वक अपनाएं। इसका अर्थ यह है कि क्रान्ति की निर्मम रीतियों का हम परित्याग करें। इसका अर्थ यह है कि हम सविनय अवज्ञा, असहयोग और सत्याग्रह की रीति का परित्याग करें। आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ती के लिए जब कोई मार्ग न रहे, तब तो इन संवैधानिक रीतियों को अपनाना बहुत कुछ न्यायपूर्ण हो सकता है, पर जब संवैधानिक रीतियों का मार्ग खुला हुआ है, तब इन असंवैधानिक रीतियों को अपनाना कभी न्यायसंगत नहीं हो सकता। ये रीतियां अराजकता के सूत्रपात के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और जितनी जल्दी इनका परित्याग किया जाए, उतना ही हमारे लिए अच्छा है'।

– डॉ. बी.आर. अम्बेडकर

शायद डॉ. अम्बेडकर को यकीन था कि भारत के लोग, राजनीतिक दल और सरकारें संविधान को तुरंत अपना ही लेने वाले हैं। उनमें यह विश्वास कहां से आया होगा? शायद उन्होंने सोचा होगा की स्वतंत्र भारत संवैधानिक चेतना और बुद्धिमत्ता को अपना लेगा, लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

आज भी यही माना जाता है कि संविधान को धारण करना केवल सरकार और न्यायपालिका की जिम्मेदारी है। ऐसे में हम कह सकते हैं कि आज़ादी के 75 साल व्यर्थ हो गये।

> हमारी बुनियादी समझ यह है कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद से मुक्ति के साथ ही भारत के एकीकरण की शुरुआत हुई थी। इसके पहले भारतीय उपमहाद्वीप की भूमि छोटे, बड़े और बहुत बड़े साम्राज्यों में विभाजित थी। उसमें भाषाई विविधता थी, राज्य व्यवस्थाओं में विविधता थी, सांस्कृतिक विविधता थी, सामाजिक विविधताएं और धार्मिक विविधताएं थीं। भारत का एकीकरण विविधताओं के सम्मान और उनके अस्तित्व के बने रहने की नैतिक शर्त पर हुआ है। इस विविधता को स्वीकार करना ही संवैधानिक बुद्धिमत्ता है।

संवैधानिक चेतना और बुद्धिमता के गुण

संवैधानिक चेतना और बुद्धिमत्ता का सबसे महत्वपूर्ण गुण है कि यह हर व्यक्ति, हर बच्चे, युवा और लैंगिक पहचान से जुड़े व्यक्ति में एक रूप में पायी जाती है, लेकिन समाज और सरकार इसे निष्क्रिय बनाये रखते हैं। यदि संवैधानिक मूल्यों को सबके द्वारा स्वीकार कर लिया जाए, तो मजहबी–जातीय–नस्लीय आधारों पर होने वाले टकरावों को समाप्त किया जा सकता है। हर व्यक्ति को यह छूट होनी चाहिए कि वह अपना विचार सामने रख सके। सभी के विचारों को सुनना

और समझना ही संवैधानिक बुद्धिमता का सूचक है। लोकतंत्र के मूल्यों को अपने जीवन के व्यवहार का आधार बनाना भी संवैधानिक बुद्धिमता का ही द्योतक है।

लोकतंत्र और संवैधानिक बुद्धिमता

लोकतंत्र से आशय पांच वर्ष में एक बार मतदान कर देना भर नहीं है, बल्कि हर मतदाता को अपना मत डालने से पहले अच्छी तरह से यह सोच विचार करना चाहिए कि कौन सा राजनीतिक दल, विचार और उम्मीदवार समाज की बेहतरी के लिए काम करने में सक्षम लग रहा है। संवैधानिक बुद्धिमत्ता का मतलब है कि भारत का नागरिक जाति, नस्ल, संप्रदाय, धर्म और अनैतिक आचरण के आधार पर गांव, प्रदेश और देश की सरकार का चुनाव नहीं करेगा।

संवैधानिक
बुद्धिमत्ता लोगों में वह विवेक
उत्पन्न करेगी, जिससे वे न्यायपालिका,
कार्यपालिका और विधायिका के कामकाज की
समीक्षा कर पाएंगे। अगर कभी न्यायपालिका का
सरकार या किसी राजनीतिक–धार्मिक विचारधारा से
गठजोड़ होता दिखाई दे, तो लोग तत्काल उस
गठजोड़ का संवैधानिक प्रतिरोध कर
सकेंगे।

अगर शिक्षा, भोजन, सूचना, समानता या सामाजिक संरक्षण की नीतियां–क़ानून बने और लागू हुए तो इसके पीछे मूल शक्ति जनता की ही है। यदि ऐसी नीतियां बनीं कि जंगलों का विनाश किया जाए, जंगलों से आदिवासियों को बेदखल किया जाए, देश की प्राकृतिक संपदा को अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में बेच दिया जाए, भीड़ की हिंसा और सांप्रदायिक दंगे हों, तो इसके पीछे भी जनता की ही शक्ति

होती है। संविधान के द्वारा उन्हें दी गयी शक्ति के बारे में जानना और उसके महत्व को महसूस करना ही संवैधानिक बुद्धिमत्ता है।

> जब भी जनप्रतिनिधि को चुनने का वक्त आए, तब नागरिक यह पड़ताल कर पाए कि उम्मीदवार के 'व्यवस्था में हित' क्या हैं, यह कौशल भी संवैधानिक बुद्धिमत्ता से संबंधित है। यह समझ और विश्वास बनना ही संवैधानिक बुद्धिमत्ता है कि भारत की व्यवस्था का संचालन बाइबिल, कुरान, गीता, चाणक्य नीति, रामायण या महाभारत की बातों के आधार पर नहीं, बल्कि संविधान के आधार पर होगा।

संवैधानिक मूल्यों के पालन की जिम्मेदारी केवल सरकारों या लोक सेवकों तक ही सीमित नहीं है। संवैधानिक चेतना और बुद्धिमत्ता के विकास से यह समझ बन पाएगी कि हर भारतीय को अपने निजी जीवन में, अपनी निजी और पेशेवर भूमिकाओं में और अपने सामाजिक व्यवहारों में भी समता, न्याय, बंधुता, गरिमा और स्वतंत्रता के मूल्यों को अपनाना ही होगा।

मूल्य आधारित नज़रिया

सामाजिक और आर्थिक बदलाव के लक्ष्य से संबंधित नज़रिये और विचार अलग-अलग हो सकते हैं। इन आधारों पर बनी योजनाओं और कानूनों में भी भिन्नता हो सकती है। नीतियों, कानूनों और विकास के प्रति संस्थाओं और राजनीतिक दलों का नज़रिया अलग-अलग हो सकता है, लेकिन मूल्यों को नहीं बदला जा सकता है। मूल्यों को अपनाने का अर्थ है यह मानना कि सामाजिक-आर्थिक बदलाव के केंद्र में न्याय, समता, पारदर्शिता-जवाबदेहिता, बंधुता, गरिमा और स्वतंत्रता जैसे मूल्य होने चाहिए। अगर मूल्यों को केंद्र में रखा

जाएगा, तो नीतियों, व्यवस्था और नेतृत्व के बदलने से समाज तथा लोगों पर विध्वंसकारी असर नहीं पड़ेगा।

जीवन मूल्य और उनके विरोधाभास

सामाजिक विकास और बदलाव की पहल में मूल्य आधारित नज़रिया अपनाने का पहला मतलब है– निजी जीवन के व्यवहार, नीति के कथानक और संस्थागत व्यवस्थाओं के बीच के विरोधाभास को समाप्त करना। भारतीय संविधान की उद्देशिका सामाजिक न्याय के मूल्य को अपनाये जाने की घोषणा करती है।

संवैधानिक मूल्य आधारित नज़रिया अपनाने का मतलब यह है कि हम अपने निजी जीवन में भी अन्य लोगों के साथ सामाजिक न्याय का ही भाव रखें और उसी के अनुरूप बर्ताव करें। हम अपने बच्चों के शिक्षा के अधिकार के प्रति सजग हैं। लेकिन यह भी सच है कि बच्चों को स्कूल में छुआछूत नहीं करने का पाठ पढ़ाया जाता है और घर वापस लौटते ही वे छुआछूत के तमाम उदाहरण अपने आसपास देखते और सीखते हैं।

हम शहर में खुशहाल जीवन के सपने की बार–बार व्याख्या करते हैं, लेकिन खुशहाल जीवन के लक्ष्य को हासिल करने के लिए बनाई जाने वाली योजना के केंद्र में बस्तियों को उजाड़े जाने की कार्यवाही होती है। कुछ की खुशहाली के लिए कुछ को उजाड़े जाने का विरोधाभास खत्म करना ही मूल्य आधारित नज़रिये का लक्ष्य है।

केवल अपने लिए बहुत अच्छा सपना बुन लेना ही जरूरी नहीं है। जरूरी यह है कि हमारी आंखों के सपने, आम लोगों और हमारे साथियों की आंखों के उन सपनों से जुड़ जाएं, जिन्हें अदृश्य मान लिया गया है। समता, स्वतंत्रता, सहभागिता, पारदर्शिता, करुणा, प्रेम, बंधुत्व, जवाबदेहिता, आदि अलग-अलग नहीं हैं। ये सब एक दूसरे से मिले हुए, गुंथे हुए मूल्य हैं। इनमें से कोई भी अकेले मौजूद नहीं रह सकता है। समता के बिना स्वतंत्रता, स्वतंत्रता के बिना सहभागिता, सहभागिता के बिना बंधुत्व का होना असंभव है।

समानता का मतलब सतही नहीं है। संविधान कहता है हम, भारत के लोग। उद्देशिका कहती है व्यक्ति को न्याय, गरिमा का अधिकार मिलेगा। 75 साल पहले भी लोगों को पता था कि भारत में सिर्फ औरत और मर्द नहीं रहते। समाज में पारलैंगिक लोग भी हैं, तथा तमाम अन्य समुदाय भी हैं। यह संविधान हर लैंगिक पहचान की कद्र करता है।

सरकार और समाज दोनों ही मूल्यविहीन विकास से सहमत हैं। तभी तो 16 लेन की सड़क का विकास लक्ष्य पाने के लिए पहाड़ काट दिए जाते हैं, खेती की जमीन बरबाद की जाती है और जंगल उजाड़ दिए जाते हैं। समाज के लोग इस पर प्रसन्नता जाहिर करते हैं।

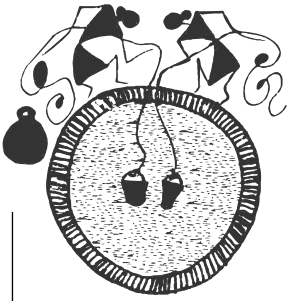

बिजली के लिए बड़े-बड़े बांध बनाये जाते हैं। इन परियोजनाओं के लिए सवा करोड़ से ज्यादा लोग उनकी जमीन, घर और गांव से उजाड़ दिए गये। गांव और समाज के एक बड़े तबके को उजाड़ कर बिजली उत्पादन के कारखाने लगाए जाते हैं और समाज का दूसरा तबका उस बिजली की रोशनी में उत्सव मनाता है।

प्राकृतिक संसाधनों को आदमी की संपत्ति मानना बंद करना होगा। हां, प्राकृतिक संसाधन समता के मूल्य के आधार पर उपयोग में लाए जा सकते हैं।

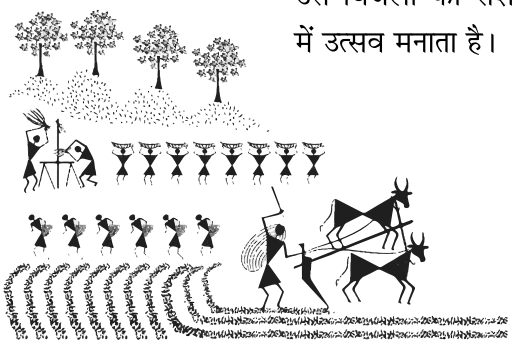

मैं ऐसे संविधान की रचना करवाने का प्रयत्न करूंगा, जो भारत को हर तरह की गुलामी और परावलंबन से मुक्त कर दे और उसे, आवश्यकता हो तो, पाप करने तक का अधिकार दे। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें गरीब से गरीब लोग भी यह महसूस करेंगे कि यह उनका देश है- जिसके निर्माण में उनकी आवाज़ का महत्व है। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें ऊंचे और नीचे वर्गों का भेद नहीं होगा और जिसमें विविध संप्रदायों में पूरा मेलजोल होगा। ऐसे भारत में अस्पृश्यता और शराब तथा दूसरी नशीली चीज़ों के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। उसमें स्त्रियों को वही अधिकार होंगे जो पुरुषों को होंगे। चूंकि शेष सारी दुनिया के साथ संबंध शांति का होगा, यानी न तो हम किसी का शोषण करेंगे और न ही किसी के द्वारा अपना होने देंगे, इसलिए हमारी सेना छोटी से छोटी होगी। ऐसे सब हितों का, जिनका करोड़ों मूक लोगों के हितों से कोई विरोध नही है, पूरा सम्मान किया जाएगा, फिर वे हित देसी हों या विदेशी। अपने लिए तो मैं यह भी कह सकता हूं कि देसी और विदेशी के फर्क से नफरता करता हूं। यह है मेरे सपनों का भारत.....इससे भिन्न किसी चीज़ से मुझे संतोष नहीं होगा।

– महात्मा गांधी (यंग इंडिया, 10 सितम्बर 1931)

संविधान संवाद पुस्तिका शृंखला

- संविधान और हम
- भारतीय संविधान की विकास गाथा
- जीवन में संविधान
- भारत का संविधान – महत्वपूर्ण तथ्य और तर्क
- संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि
- संवैधानिक व्यवस्था : एक परिचय
- संविधान की रचना प्रक्रिया
- संविधान सभा में स्वतंत्रता का घोषणा पत्र
- संविधान की उद्देशिका से परिचय
- संविधान : मूल अधिकार और नीति निदेशक तत्व
- संविधान और रियासतें
- संविधान बोध और संवैधानिक नैतिकता
- भारत के संविधान के रोचक किस्से
- भारत का राष्ट्रीय ध्वज : तिरंगे की कहानी
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर और भारतीय संविधान
- गांधी का संविधान
- संविधान और आदिवासी
- स्वाधीनता, स्वतंत्रता और संविधान
- संविधान और समाजवाद तथा आर्थिक समानता
- संविधान और सांप्रदायिकता
- संविधान और चुनाव प्रणाली
- संविधान और न्यायपालिका
- संविधान और अल्पसंख्यक
- इंसानी व्यवहार में लोकतंत्र के होने का मतलब

पुस्तकें पाने के लिए संपर्क करें –
vikassamvadprakashan@gmail.com / 0755 - 4252789

'संविधान संवाद' शृंखला क्यों?

जब हम किसी विषय के बारे में अनभिज्ञ रहते हैं तो कोई फर्क नहीं पड़ता है लेकिन जब हम उसके बारे में जानना शुरू करते हैं तो फिर हर पहलू को टटोलने, जानने और समझने की आवश्यकता और ललक होती है।

भारतीय संविधान से जुड़ी तमाम जानकारियों को जानने की उत्कंठा के कारण ही 'विकास संवाद' ने 'संविधान संवाद शृंखला' आरंभ की है। इसका उद्देश्य संविधान की विकास गाथा को जानना, उसके उद्देश्य को समझना तथा तय लक्ष्यों की प्राप्ति में हम नागरिकों के कर्तव्यों के बोध की पहल करना है।

यह संवैधानिक मूल्यों के आत्मबोध से उन्हें आत्मसात करने तक की यात्रा है।

विकास संवाद

Azim Premji Foundation